स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।

नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्।।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । | सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ।। | किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर।।

वर्ष १७ | गौराब्द ४८५, मास—नारायण १४, वार—कारणोदशायी
बृहस्पतिवार, २९ अग्रहायण, सम्वत् २०२८, १६ दिसम्बर १९७१ | संख्या ७

दिसम्बर १९७१

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

बाणासुरयुद्धे श्रीरुद्रस्य श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।६३।३४-४५)

श्रीरुद्र उवाच—

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ।

यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ।।३४।।

श्रीरुद्रजीने बाणासुरके भुजाओंको कटते देखकर भगवान् श्रीकृष्णसे यह कहा—हे देव ! आप निखिल ज्योतिस्वरूप हैं। आप सभीके प्रकाशक होने के कारण स्वयं परमज्योतिःस्वरूप एवं शब्द-ब्रह्मरूपी वेदादि शास्त्रोंमें तात्पर्य रूपसे छिपे हुए परब्रह्म हैं । परन्तु केवलमात्र शुद्धचित्त भक्त लोग ही निर्मल आकाशकी तरह शुद्धस्वरूप आपका साक्षात्कार प्राप्त करते हैं ।।३४।।

नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो द्यौः शीर्षमाशाः श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी ।

चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः ।।३५।।

रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः ।

प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः स वै भवान् पुरुषो लोककल्पः ।।३६।।

यह आकाश आपका नाभि है, अग्नि मुख है, जल रेतः(वीर्य) है, स्वर्ग मस्तक है, सभी दिशाएँ ही श्रवणेन्द्रिय हैं, पृथिवी पद है, चन्द्र मन है, सूर्य आँखें हैं, मैं अर्थात् शिव अहंकार हूँ, समुद्र उदर है, इन्द्रादि लोकपाल ही बाहुस्वरूप हैं, ओषधियाँ रोमराजि हैं, मेघमाला केशराशि है, ब्रह्मा बुद्धि हैं, प्रजापति मेढ्र (लिङ्ग) हैं, एवं धर्म हृदय है। आप इस प्रकार कार्यकारणात्मक इस चौदह भुवनके अवयवी पुरुषरूपसे वर्त्तमान हैं ॥३५-३६॥

तवावतारोऽयमकुण्ठधामन् धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ।
वयं च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त ॥३७॥

हे अकुण्ठधामन् ! धर्मरक्षा एवं जगतके अभ्युदयके लिए आपका यह अवतार है। सारे लोकपाल लोग (हम लोग) आपके द्वारा पालित होकर सप्त भुवनोंका पालन करते हैं ॥३७॥

त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः ।
प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्धयै ॥३७॥

आप सजातीय भेदरहित हैं, आदिपुरुष हैं, विजातीय भेदशून्य हैं, तुरीय हैं, स्वप्रकाश हैं एवं कारणरहित होकर भी सर्वकारणकारण हैं तथा सर्वान्तर्यामी होकर भी विषय-समूहके प्रकाशके लिए अपनी मायासे तत्तत् विकारानुरूपसे प्रतीत होते हैं ॥३८॥

यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया छायां च रूपाणि च सञ्चकास्ति ।
एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥ ३९ ॥

हे भूमन् ! सूर्य जिस प्रकार लोकनयनके साम्ने अपनी छायास्वरूप मेघद्वारा आच्छादितकी तरह प्रतीत होकर भी इस मेघ एवं उसके द्वारा अन्तरित घटादि पदार्थसमूहको प्रकाश करते हैं, उसी प्रकार आप भी स्वकार्यभूत अहंकार द्वारा आच्छादितकी तरह प्रतीत होकर भी स्वप्रकाशरूपसे सत्त्वादि गुण एवं जीवसमूह को प्रकाशित कर रहे हैं ॥३९॥

यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥४०॥

सभी जीव आपकी मायासे मोहितचित्त होकर पुत्र-दार-गृहादि विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होकर दुःखसागरमें उन्मज्जित और निमज्जित हो रहे हैं ॥४०॥

देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः ।
यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवंचकः ॥४१॥

जो जीव इन्द्रिय-वशीभूत होकर आपकेद्वारा प्रदत्त भजनयोग्य इस नरदेहको प्राप्त होकर भी आपकी पादपद्म-सेवासे विमुख है, वह वस्तुतः ही शोचनीय है। क्योंकि वह आत्मवंचना कर रहा है ॥४१॥

यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् ।
विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥४२॥

जो मनुष्य अनात्मा, अप्रिय और अनीश्वर पुत्रादि विषयोंमें आसक्त होकर अन्तर्यामी, प्रिय एवं ईश्वररूप आपका परित्याग करता है, वह अमृत परित्याग कर विष भक्षण करता है ॥४२॥

अहं ब्रह्माथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः ।
सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वम् ॥४३॥

हे देव ! मैं (शिव), ब्रह्मा, इन्द्रादि देवता, विशुद्धचित्त मुनि लोग आदि हम सभी सर्वप्रकारसे अन्तर्यामी, प्रियतम, ईश्वरस्वरूप आपके शरणागत होकर वर्त्तमान हैं ॥४३॥

तं त्वा जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं समं प्रशान्तं सुहृदात्मदैवम् ।
अनन्यमेकं जगदात्मकेतं भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥४४॥

आप जगतकी सृष्टि, स्थिति एवं संहार करनेवाले हैं; आप शान्त, वैषम्यबुद्धि-रहित, प्रियतम, अन्तर्यामी, ईश्वर, सजातीय-विजातीय भेदशून्य एवं जगत् तथा जीवसमूहके अधिष्ठान-स्वरूप हैं। हम लोग जन्म-जन्मान्तरमें भक्तियोग-लाभके लिए आपकी आराधना कर रहे हैं ॥४४॥

अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्त्ती मयाभयं दत्तममुष्य देव ।
सम्पाद्यतां तद् भवतः प्रसादो यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥४५॥

हे देव ! यह बाणासुर मेरा सखा एवं प्रियसेवक है; मैंने पहले इसे अभय-दान दिया है। अतएव दैत्यपति प्रह्लादके प्रति जैसा आपका अनुग्रह है, वैसा ही अनुग्रह इसके प्रति भी करें ॥४५॥

॥ इति श्रीरुद्रस्य श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥

॥ इति श्रीरुद्रजीका श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त ॥

नवीन ब्रह्म-वादकी परिणति

'ब्रह्म-तत्व' नामक त्रैमासिक पत्रिकाकी तृतीय संख्यामें ऐसा लिखा गया है—

"आधुनिक ब्रह्म-विज्ञान क्रमशः ही वेदान्त मतकी निकटता प्राप्त कर रहा है। नव्य ब्रह्म-विज्ञानविदोंमें महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर महाशय द्वारा धर्म-विषयमें बहुत कुछ परिमाणमें प्राचीन भाव रक्षित होने पर भी उन का प्रचारित ब्रह्म-विज्ञान वेदान्त-मतका विरोधी है। महात्मा केशवचन्द्रके सम्बन्ध में यह बात और भी अधिकतर सत्य है। जिसे हमने आधुनिक ब्रह्म-विज्ञान का द्वितीय या नवयुग कहा है, उसमें प्रारम्भसे ही जड़ शक्तिका अस्तित्व अस्वीकार कर पूर्व प्रचारित द्वैत-मत पर आघात किया गया है। क्रमशः जड़का स्वतन्त्र अस्तित्व अस्वीकार कर आत्मा एवं जड़का द्वैतभाव सम्पूर्ण रूपसे परित्याग किया गया है।"

यह गद्यांश पाठ कर जान पड़ता है कि लेखकने विशेष सरलताके साथ ही उपयुक्त सभी वाक्य स्वीकार किया है। नव्य-ब्रह्मवाद धर्म को विशेष रूपसे जानना हो, तो उसका मूलानुसन्धान करना आवश्यक है। 'नव्य-ब्रह्मवाद' कहकर जो धर्म नव्य-सम्प्रदायमें गृहीत हुआ है, वह ईसा-मसीह द्वारा प्रचारित सविशेषवाद एवं शंकर-व्यक्त निर्विशेष-अद्वैतवादके संघर्षणसे उत्पन्न हुआ है। सविशेषवाद की रक्षा करने के लिए निर्विशेष धर्मसे विरत होना आवश्यक है। निर्विशेषवादकी पोषकता आवश्यक होने पर विशेष-धर्म के प्रति आनुरक्ति कम हो जाना स्वाभाविक है। नव्य-ब्रह्मवादके प्रवर्त्तक एवं उन के सहचर लोग दोनों मतोंका सामञ्जस्य रखनेके लिए इतने समय तक व्यस्त थे। श्रीदेवेन्द्रनाथ ठाकुर महाशय एवं सेन-वंशधर (श्री केशवचन्द्र सेनके अनुगत व्यक्ति) लोग—ये दोनों ही शंकरवाद स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत नहीं थे। इस समय नये-नये व्यक्ति लोग उक्त सम्प्रदायमें रहकर भी अपने आचार्य अवलम्बित प्रथासे स्वतन्त्र होकर उनकी अपनी-अपनी रुचिके अनुकूल पथका उद्घाटन करनेके लिए कृतसंकल्प हुए हैं। वे लोग अपनेको शंकर-किंकर कहनेमें गौरव बोध कर रहे हैं। उनके धर्ममें ईसा-मसीह द्वारा प्रचारित धर्मांश क्रमशः क्षीण हो पड़ा है।

द्वैतवाद और अभेदवाद जल और तैल की तरह भिन्न स्वरूपसे गठित हैं। उनके सम्मिलनमें नवीन मिश्र-धर्म का साम्य अधिक दिन स्थायी नहीं हो सका। प्राकृतिक नियम से विरुद्ध क्रिया संघटित होना कदापि संभवपर नहीं है। नव्य ब्राह्म-मतावलम्बियोंने मायावादसे दूर रहने के लिए कुछ उपायों की उद्भावना की थी। उनके उत्तराधिकारी व्यक्तियोंके अनुसन्धानमें वही असमञ्जस्यभाव क्रमशः ही परिस्फुट हो रहा है। वर्त्तमान नव्य-ब्राह्म लोग "द्वैतवादी" कहकर अपना परिचय देने में घृणा बोध करते हैं। उन्होंने मायावाद-गह्वरके आश्रयमें स्थान पाया है। उन्हें भक्तिवाद और अच्छा नहीं लग रहा है। ब्रह्म-शब्दकी आनुषङ्गिक भाव-माला या गौण

विचारधारा उन पर छाई हुई है। अभी भी उन्होंने सम्पूर्णरूपसे विशुद्ध शंकर-मत ग्रहण नहीं किया है, यही उनका अभाव देखा जा रहा है। समय आनेपर वे शंकराचार्य द्वारा उद्भावित पारमार्थिक और व्यवहारिक भेद अंगीकार करेंगे। अभी भी वह समय आया नहीं है। आने में अधिक विलम्ब भी नहीं है, यही जान पड़ता है। वर्त्तमान प्राकृत विज्ञानविदोंके गणिताभिज्ञके मतानुसार कोई नैमित्तिक घटनाके द्वारा प्रतिरुद्ध न होने पर समजातीय कार्य की भी परिणति निश्चय ही समभावसे होगी। उसी प्रकार नव्य-ब्राह्म मतावलम्बी लोग क्रमशः ही प्राचीन ब्राह्म मतावलम्बी लोगों के साथ जिस-जिस विषयमें विरोध कर नवीन दलमें प्रतिष्ठित हुए थे, यह नव-संयोजित वैचित्र्य क्रमशः परित्यक्त हो रहा है और होगा, यह बात भली प्रकार समझ पा रहे हैं। ईसाई-शास्त्रका जो आंशिक अपरिस्फुट भक्ति भाव उन लोगोंने उनके अपने धर्ममें योजना की थी, वह क्रमशः धर्माश-विषयके विरुद्ध धर्मसम्पन्न होने के कारण स्वभावतः पृथक ही पड़ रहा है।

मनुष्य का स्वाभाविक धर्म भक्ति है। ज्ञान परिपक्वता प्राप्त कर ही भक्ति में पर्यवसित होता है। किन्तु नवीन सम्प्रदायके व्यक्तियोंने भ्रमवशतः ही निराकार ब्रह्मके प्रति भक्ति आदि शब्दका अपव्यवहार किया है। जान पड़ता है कि क्रमशः वे लोग भक्तिको साधारण काम-क्रोधादि जातीय भाव समझेंगे। वह उन्हें ही अच्छा लगता है। कृत्रिम भक्ति और द्वैतवाद ब्रह्ममें संयुक्त कर भी स्थायी नहीं हुए। १२८८ बंगाब्दकी सज्जनतोषणी के १म खण्डमें भक्ति-चैतन्यचन्द्रिकाकी समालोचनामें ऐसा लिखा है कि ब्रह्म-भक्ति असम्भव है। सोनेकी पत्थर वाटी (कटोरी) और कटहलका आमसत्व जिस प्रकार निरर्थक शब्द हैं, उसी प्रकार ब्रह्म-भक्ति और निराकार-भक्ति भी निरर्थक हैं। अस्वाभाविक कार्य में प्रवृत्त होने पर आखिरमें उपहास का पात्र बनना पड़ता है। जड़ और आत्मा का द्वैत-भाव सम्पूर्ण रूपसे परित्याग करना अर्थात् जड़को वस्तु न समझना शांकरी-वेदान्त का तात्पर्य है। इस समय नव्य-ब्राह्म लोग वही अविरोधसे मुक्त कण्ठ द्वारा घोषित कर रहे हैं। इस धर्मके आदि-प्रवर्त्तयिताके समयसे जिन सभी निरीह व्यक्तियोंने उनका मतानुसरण किया, सभीकी ही उपासना का फल यह हुआ कि ईश्वर और जीव अभिन्न हैं, जड़ और आत्मा दो पदार्थ नहीं हैं। तब उपासना किसकी हुई और किस लिए ? इन सभी विचारोंकी चिन्ता करते-करते पुनः व्यवहारिक और पारमार्थिक वाद आकर उनके चित्ताकाशको पूर्ण करेगा। घात-प्रतिघात न्याय द्वारा इस समय ही वे लोग ठीक शंकराचार्यके मत और सभी शब्दोंका व्यवहार नहीं करेंगे। किन्तु समय आने पर घूर्णायमान चक्र की तरह एक स्थलमें आकर गतिहीन होंगे एवं वह भ्रान्ति-स्थल का बिन्दु ही शंकराधिष्ठित क्षेत्रमें अवस्थित होगा।

हम लोग वागवितण्डा वृद्धि करने की चेष्टा नहीं कर रहे हैं। वाग्वितण्डा समाप्त होकर शुद्ध ज्ञानमें परिणत हो—यही हमारी चेष्टा है। नवीन लेखकोंमें एक भयंकर उत्पात उपस्थित है। वह उत्पात यही है कि शांकरी मत केवल कुछ परिमाणमें आलोचना करके ही विदेशीय अद्वैतवादियों का ग्रन्थ

आलोचनापूर्वक अद्वैतवाद के सम्बन्धमें एक असम्पूर्ण सिद्धान्त हो उठ रहा है। विदेशीय अद्वैतवादी प्रचारकोंने गम्भीर रूप से गवेषणा न करके ही प्रत्येक व्यक्ति ने ही एक-एक मत स्थिर किया है। उनकी पुस्तकोंमें आत्मा-नात्म-विवेक विषयमें अनेक भ्रम है। ब्रह्म, ब्रह्मकी अनपायिनी शक्ति जीव एवं जड़वस्तु का तत्व सुन्दर रूपसे विचार न कर ही वे लोग जड़ और आत्माके सम्बन्धमें निरूपण करने जाकर अत्यन्त असमञ्जस्य वाक्योंमें अपने-अपने मतकी पोषकतामें बहुत प्रकारसे वृथा वागाडम्बर किये हैं। देशीय युवक लोग अपने आचार्य शंकरकी विचार-प्रणाली आद्योपान्त न समझकर ही विदेशीय ग्रन्थार्थ विचार करने लग जाते हैं। इसका परिणाम यह है कि विदेशीय वागाडम्बरमें आवद्ध होकर विचित्र बातें कहते रहते हैं, किन्तु समझनेकी चेष्टा करने पर उनमें लेशमात्र भी सार पाया नहीं जाता। पुनः उनमें से कोई कोई व्यक्ति विदेशीय वागाडम्बर-प्रथा शिक्षा करते हुए जब फिर से स्वदेशीय विद्वानोंकी पुस्तक आलोचना करते हैं, तब उनके दूषित चित्तमें स्वदेशीय-प्रथाकी कोई भी अपूर्वता प्रकाशित नहीं होती। आधुनिक ब्रह्म-विज्ञान क्रमशः ही वेदान्त-मतका निकटवर्ती हो रहा है—यह बात उसी का उदाहरण है। वेदान्त मत क्या है ? केवल-अद्वैतवाद है या और कुछ ? यह बात अभी हमारे ब्राह्म-भ्राताओं ने यत्न कर नहीं समझा है। राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर या नव-युगीय लेखक लोग—इनमें से किसी ने भी इसे समझने की चेष्टा नहीं की है।

श्री शंकराचार्य ही वेदान्तके पुरातन आचार्य हैं। वे वेदान्त-सूत्रमें केवलाद्वैतवाद देख पाते हैं। श्रीरामानुजाचार्यने इसके पश्चात् सभी सूत्रोंमें ही विशिष्टाद्वैतार्थ लक्ष्य किया। उनके भी पश्चात् श्रीमध्वाचार्यजीने इन सभी सूत्रोंमें पुनः केवल-द्वैतवाद दिखलाया। श्री निम्बार्काचार्यने उन सूत्रोंसे ही द्वैताद्वैत-वाद प्रकाश किया। श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु ने इन सभी वादोंका सामञ्जस्यरूप अचिन्त्य भेदाभेदवाद ही उन सभी सूत्रोंका यथार्थ अर्थ है—यह जगतको दिखलाया था। विदेशीय अद्वैतवाद शंकरके केवलाद्वैतवाद का अस्फुट विकार मात्र है। इन सभी वादोंको लेकर वितर्क करनेपर मानवका क्षुद्र जीवन अतिवाहित हो जायगा, तथापि कोई सिद्धान्त न होगा। सिद्धान्तके पश्चात् जो कर्त्तव्य है, वह भी अनुष्ठित नहीं होगा। अधिक क्या, नर-जीवन निरर्थक ही बीत जायगा। अतएव इन सभी वादोंको दूर रखकर विचार करने में ही भलाई है।

संक्षेपमें विचार यही है कि ब्रह्म एकमात्र अद्वितीय वस्तु हैं। उस वस्तुमें वस्तु-योग्य कोई अचिन्त्य शक्ति अनपायिनी रूपसे सर्वदा वर्त्तमान है। उसी अचिन्त्य शक्तिका परिणाम यह जैव और जड़ जगत हैं। नित्य-शक्तिकी परिणति कदापि मिथ्या नहीं है। अतएव जड़-जगत् एवं जैव-जगत्—दोनों ही सत्य हैं। वे ब्रह्म इच्छामय हैं। अतः उनकी इच्छा होने पर ये दोनों जगत् निवृत्ति प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए जड़-जगत् नश्वर है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। आत्म-शक्तिसे उद्भूत जड़-शक्ति नहीं है, ऐसी बात नहीं है। वह नित्य रहेगी, ऐसा भी नहीं। अतएव यह विचित्र जगत् नरबुद्धि से अतीत युगपत् भेदाभेदप्रकाश मात्र है। इस विषयको हमारे नवीन भ्राता लोग भली

प्रकारसे समझनेकी चेष्टा करें, यही प्रार्थना है। अन्धकारमें हाथ बढ़ानेसे कोई लाभ न होगा। ब्राह्म-धर्म जिस अभिप्रायसे, जिस प्रणाली द्वारा एवं जिस कारणसे स्थापित हुआ था, उसमें दोष दिखानेके पूर्व अपने आपको प्रस्तुत होना ही उचित है।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(प्रचार)

१—आचार-प्रिय, प्रचार-प्रिय एवं आचार-प्रचार-प्रिय भक्त कौन हैं ?

"विविक्तानन्दी लोग आचार-प्रिय एवं गोष्ठ्यानन्दी लोग सर्वदा प्रचार-प्रिय होते हैं। उनमेंसे कोई-कोई दोनों कार्यके प्रिय होकर आनन्द प्राप्त करते हैं। भगवत्-नाम-स्मरण ही प्रेमभक्तका आचार एवं भगवन्नाम-कीर्त्तन ही प्रेमभक्तका प्रचार-कार्य है।"

—चै० शि० ६।३

२—महाप्रभुका धर्म क्या प्रचार्य है ?

"महाप्रभुने सभीको ही वैष्णव-धर्मका प्रचार-भार दिया है।"

—जै० ध० ८म अ०

३—प्रचारमें कैसी नीति अवलम्बन करनी होगी ?

"अपात्रको सुपात्र कर नाम-उपदेश देना चाहिए। जहाँ उपेक्षा की आवश्यकता हो, वहाँ ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए, जिससे प्रचार-कार्य का व्याघात हो।"

— जै० ध० ८म अ०

४—श्रीमद् भक्तिविनोद ठाकुरने विपुल भावसे श्रीमन्महाप्रभुके आज्ञा-प्रचारके लिए कौन-सी प्रणालीका निर्देश किया है ?

"नगर-नगरमें श्रीकृष्णसंकीर्त्तन और श्रीगौरांगदेवकी शिक्षा का प्रचार करें। * * आप लोग श्रीचैतन्य-चरितामृत लेकर द्वार-द्वार पर श्रीमन्महाप्रभुका नाम एवं शिक्षा प्रचार करें। श्रीमन्महाप्रभुने जिस प्रकार श्रीनित्यानन्द एवं श्रीहरिदासको आज्ञा-टहल प्रचार करनेकी आज्ञा दी थी, आप लोग भी श्रीगौरांगके दास होकर सर्वदेशमें श्रीआज्ञा-टहल-प्रचारमें सत्पात्रोंको नियुक्त करें। प्रचार-कार्य असत्पात्रके द्वारा नहीं होता। हमारी विवेचनाके अनुसार आप लोग अविलम्ब ही एक वैष्णव-चतुष्पाठी करें। कुछ निःस्वार्थ सच्चरित्र लोगोंको इस चतुष्पाठीमें शिक्षित कर नगर-नगरमें एवं पल्ली-पल्लीमें श्रीआज्ञा-टहल प्रचारका भार अर्पण करें।"

—'श्रीमद्गौरांग-समाज', स० तो० ११।३

५—पूर्वतन वैष्णववर्ग और गोस्वामीपाद लोगोंने किस प्रकार वैष्णव-धर्म-संरक्षण एवं प्रचार किया था ? वर्त्तमान युगमें भी किस शक्तिसे वैष्णव-धर्म प्रचारित हो रहा है ?

"पूर्वतन वैष्णवों एवं गोस्वामियोंमें से कोई-कोई भक्तिग्रन्थ-प्रकाश, कोई-कोई नाना प्रकार की पद-पदावली, कोई-कोई धर्मप्रचार एवं हरि-संकीर्त्तन तथा कोई-कोई अपने अनुपम वैष्णवता एवं पवित्र चरित्र द्वारा विशुद्ध सनातन वैष्णवधर्मालोकद्वारा जगत्को आलोकित कर रखते थे। काल-प्रभावसे नाना उपधर्म-अन्धकार द्वारा जगत् आच्छन्न होनेके कारण श्रीमन्महाप्रभुने पुनः अपनी शिक्षा एवं प्रेम-विस्तार तथा वैष्णव-आचार-व्यवहार प्रचार करनेके लिए इस समय बहुतसे व्यक्तियोंका मन-आकर्षण एवं किसी-किसी भक्त-हृदयमें शक्ति-संचार कर रहे हैं।"

—'वैष्णवसभा तथा वैष्णव धर्म-प्रचार' स० तो० १।२

६—श्रीचैतन्य-महाप्रभुके विशुद्ध धर्मके लिए कलङ्कारोपकारी व्यक्तियोंके प्रति क्या कर्त्तव्य है ?

श्रीश्रीमहाप्रभुके उपदिष्ट और आचरित पवित्र धर्मपुष्पमें जो सभी कीट प्रविष्ट हुए हैं, उन सभी अनिष्टकारी कीटोंको इस धर्म-पुष्पसे दूरीभूत करनेके लिए यत्न करना भी हमारा उद्देश्य है। ये सभी कीट धर्मपुष्पके केवल सौगन्ध ही हरण कर रहे हैं, ऐसी बात नहीं। वे क्रमशः उक्त पुष्पको काट काटकर निःशेषित करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। श्री-महाप्रभु-चैतन्यदेव, प्रभु नित्यानन्द एवं उनके पुत्र वीरचन्द्रजीने वैष्णव-संसार पत्तन करनेके के लिए जो सभी पवित्र उपदेश-बीज रोपण किया था, वह कहीं ऊषर-क्षेत्रमें पड़कर निष्फल हुआ है, कहीं तो अयथा भूमिमें पड़कर अयथा भूतवृक्ष हो उठा है।"

—'सज्जनतोषणी पत्रिका का उद्देश्य', स० तो २।४

७—वैष्णव-धर्मके पुनरुद्धारके लिए क्या करना कर्त्तव्य है ?

"वैष्णव-धर्मको कीचड़से उद्धार करनेके लिए समस्त दौरात्म्य दूर करने की चेष्टा अवश्य ही करनी होगी।"

—'भेकधारण' स० तो २।७

८—ठाकुर भक्तिविनोदने दुष्ट-मत निरसन करनेके लिए कैसे सहिष्णु होने के लिए कहा है ?

"यदि आपके देशमें ये सभी दुष्ट मत हों, तो आप उक्त सभी मतोंका शोधन करने की चेष्टा करेंगे। इससे धूर्त्त और वंचक लोगोंके साथ यदि मनोवाद भी हो, तब भी उसे श्रीमन्महाप्रभुकी प्रसन्नताके लिए स्वीकार करेंगे।"

—'सहजिया मतका हेयत्त्व', स० तो ४।६

९—शुद्ध भक्ति प्रचारके साथ-साथ भक्तिविरोधी लोगोंका चरित्र-विश्लेषण आवश्यक है क्या ?

"भक्तिका नाम कर अनेक स्थलमें अवैध और भक्तिविरोधी क्रिया-समूह आचरित होते हैं। उन सभी विषयोंको स्पष्टरूपसे नहीं दिखलानेसे शुद्धभक्तिमें जय लाभ नहीं होता।"

—'सज्जनतोषणी पत्रिका का उद्देश्य' स० तो २।४

१०—पृथिवीकी सभी भाषाओंमें श्रीचैतन्यदेव की लीला लिखने की प्रयोजनीयता क्यों है ?

"श्रीचैतन्य-लीला सभी भाषामें लिखनेकी प्रयोजनीयता है। अत्यन्त थोड़े समयमें ही श्रीमहाप्रभु सर्वदेशव्यापी होकर एकमात्र उपास्य-तत्व हो रहे हैं।"

—'समालोचना' स० तो ४।३

११—श्रीचैतन्य-कथा विस्तार एवं तदीय पदाङ्कपूत तीर्थोद्धारके लिए ठाकुर भक्तिविनोदकी कैसी आर्त्ति थी ?

"श्रीप्रयाग-क्षेत्रमें दशाश्वमेध-घाटमें (जहाँ श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूप गोस्वामीको शिक्षा दी थी) भक्त लोग एक सेवा प्रकाश करनेका यत्न कर रहे हैं। यह कार्य यदि हो जाय,तो श्रीमन्महाप्रभु का प्रचार भली-प्रकार हो सकता है। श्रीगया-क्षेत्रमें जहाँ श्रीमन्महाप्रभुने श्रीईश्वर पुरीके निकट मन्त्र-ग्रहण किया था, उसी फल्गु-तीर्थके निकट एक सेवा प्रकाश करने के लिए वहाँ कोई प्रभु-सन्तान विशेष यत्न कर रहे हैं। * * इस समय काशीधाममें चन्द्रशेखर-भवन (जहाँ श्रीमन्महाप्रभुने सनातन गोस्वामीको शिक्षा दी थी) कहाँ है, यह स्थिर कर कोई महात्मा वहाँ एक सेवा प्रकाश करनेका यत्न करें।"

—'नववर्षमें विगत वर्ष की आलोचना', ससंगिनी, स० तो० १।८

१२ प्रचारक लोग किस सूत्रसे श्रीमहाप्रभुका धर्म प्रचार करेंगे ?

"प्रेम-सूत्रमें श्रीमहाप्रभुके प्रचारक लोग कार्य करते थे। उन लोगोंने कोई वेतन या पुरस्कार की आशा नहीं की थी। विशुद्ध चरित्र प्रचारकके बिना प्रचार सम्भव नहीं होता। इसलिए अन्यान्य धर्मोंमें वेतनग्राही लोग प्रचार करते हैं, तथापि उसके द्वारा यथेष्ट फल नहीं होता।"

—श्रीचै० शि० १।२

१३—स्वयं श्रीमन्महाप्रभु और पार्षद वर्गमें किन्होंने किस प्रकार सर्वत्र हरिनाम प्रचार किया था ?

"कलियुगपावनावतारी अपार-कृपा-पारावार श्रीमद्गोद्रुमचन्द्र श्रीमन्महाप्रभुने संन्यास ग्रहण कर जगतमें सर्वत्र हरिनाम-प्रचार किया था। स्वयं श्रीमन्महाप्रभुने श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्रमें रहकर उत्कलवासी और दक्षिणात्यवासी व्यक्तियोंको परमार्थ वितरण किया। बंग-देशमें श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु एवं श्रीमद् अद्वैतप्रभुको श्रीनाम एवं भगवत्तत्त्व प्रकाश करनेका अधिकार प्रदान किया। पाश्चात्य-भूमिमें शुद्ध भक्ति और नाम-महिमा प्रचार करनेके लिए श्रीमद् रूपसनातनादि गोस्वामियों को प्रेरण किया। श्रीमद् रूप गोस्वामीने शुद्धनाम, शुद्धभक्ति और श्रीनाम-महिमा प्रचार किया था। इन नामरसाचार्य गोस्वामीप्रवरने जिस नाम-महिमाष्टककी रचना की थी, वह इस समय आपके निकट मैं गान कर रहा हूँ। कृपा-पूर्वक श्रवण करते हुए श्रीहरिनामकी महिमा अनुभव करें।"

—नाम-महिमा', वे० सि० मा० ५ म गुटीका

१४—नाम-हट्टके मूल-महाजन, कर्मचारी और टहलदार पदवीके क्या-क्या कार्य हैं ?

शुद्ध-टहल किस प्रकार होता है ?

"श्रीमन्महाप्रभुने कलि-जीवके प्रति कृपा कर श्रीनित्यानन्द प्रभुको घर-घरमें नाम प्रचार करनेकी आज्ञा दी। अतएव नित्यानन्द प्रभु ही गोद्रुमस्थ नाम-हट्टके मूल-महाजन हैं। नामहट्टके समस्त कर्मचारी लोग ही आज्ञा-टहलके अधिकारी होने पर भी टहलदार पदातिक-महाशय लोग इस कार्यको विशेष-रूपसे निःस्वार्थ होकर किया करते हैं। प्रभु नित्यानन्द और पदातिक हरिदास ठाकुरने सर्वप्रथम अपना-अपना यह कार्य कर उक्त पदका माहात्म्य दिखलाया था। अर्थ या खाद्य इत्यादि की आशासे जो टहल दिया जाता है, वह शुद्ध आज्ञा-टहल नहीं है।

टहलदार महाशय करताल बजाकर कहेंगे - हे श्रद्धावान् जन ! मैं तुम्हारे निकट कोई पार्थिव वस्तु या उपकार नहीं चाहता। मेरी केवल यही भिक्षा है कि तुम श्रीमन्महाप्रभुकी आज्ञा पालन करते हुए कृष्णनाम करो, कृष्ण-भजन करो और कृष्ण-शिक्षा करो। * * * हे श्रद्धावान् जन ! नामाभास त्यागपूर्वक शुद्धनाम गान करना ही जीवोंके लिए परम श्रेयः है। कृष्णनाम करते-करते कृष्ण भजन करो। श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य एवं आत्म-निवेदन द्वारा अधिकार-भेदसे विधि-मार्ग या राग-मार्गसे भजन करो। * * * हे श्रद्धावान जीव ! दस अपराध शून्य होकर कृष्णनाम करो। कृष्ण ही जीवके माता, पिता, सन्तान, द्रविणादि धन और पति या प्राणेश्वर हैं। जीव - चित्कण है, कृष्ण—चित्सूर्य हैं, जड़-जगत्—जीवका कारागार है। जड़ातीत कृष्ण-लीला ही हमारा प्राप्य धन है।* * *

हे श्रद्धावान् जीव ! तुम कृष्णबहिर्मुख होकर मायिक संसारमें सुख-दुःख भोग करते हो। यह अवस्था तुम्हारे योग्य नहीं है। * * * चौर्य, मिथ्या-भाषण, कापट्य, विरोध, लाम्पट्य, जीव-हिंसा, कुटीनाटी आदि अपने लिए एवं समाजके लिए अहित-कर कार्य हैं—समस्त ही अनाचार है। इन सभी असत्-कार्योंको छोड़कर सदुपाय द्वारा कृष्णका संसार करो। सार बात यही है कि सभी जीवोंके प्रति दया करते हुए शुद्ध चरित्रके साथ तुम कृष्णनाम करो। कृष्णनाम और कृष्णरूपादि तुम्हारे सिद्ध-स्वरूपगत नयनके गोचर होंगे। कुछ दिनोंमें ही तुम्हारा चित्स्वरूप उदित होकर कृष्णप्रेम-समुद्रमें भासते रहोगे।"

—'नाम-प्रचार' (आज्ञा)
वै० सि० मा० ६वीं गुटीका

१५—श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराज और श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुरने नाम-हट्टके प्रचारमें किस प्रकार उद्यम और आनन्द प्रकाश किया है ?

"हम लोग विगत २८ फाल्गुनमें उक्त ग्राममें (आमलाजोड़ामें) उपस्थित थे। पूर्व रात्रमें एकादशी-जागरणके पश्चात् प्रातःकाल ८ बजे ग्रामस्थ भक्तवृन्द महासमारोहके साथ कीर्तन करते हुए बाहर निकले। परम पूज्यपाद सिद्ध श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाशयको अग्रवर्त्ती कर सभी प्रपन्नाश्रममें पहुँचे। उस समय कीर्तनके अवसर पर

बाबाजी महाशयमें जो सभी भाव उदित होने लगे, उन्हें वर्णन नहीं किया जा सकता। शत वर्षसे ऊपर की आयुमें जिस प्रेमानन्दसे सिंह की तरह उनके नृत्यमें एवं बीच-बीचमें "निताई कि नाम एनेछे रे। नाम एनेछे नामेर हाटे श्रद्धा मूल्ये नाम दितेछे रे। दयाल निताइ आमार जगाब मार खेय प्रेम देय रे॥" इत्यादि धूया अवलम्बन कर उनके अजस्र क्रन्दन और भूमि-लुन्ठन-समयमें वहाँ एक आश्चर्य दृश्य उपस्थित हुआ था, जो अन्यत्र देखा नहीं जाता। बाबाजी महाराजके भाव दर्शन कर एवं कीर्त्तनानन्दमें निमग्न होकर सभीने ही प्रायः अश्रु-पुलकसे परिपूर्ण और भावसे गद्गद होकर बहुत देर तक नृत्य किया था। बहुत देर बाद कीर्त्तन स्थगित होने पर संक्षेपमें नामहट्ट सम्बन्धी एक वक्तृता हुई। बाबाजी महाशयने विशेष आनन्द प्रकाश कर प्रपन्नाश्रमका कार्य तुरन्त प्रारम्भ करनेकी आज्ञा प्रदान की। विपणि-पति महाशयने बाबाजी महाशयके अनुमतिके अनुसार उसी दिन ही प्रपन्नाश्रम प्रतिष्ठा-कार्य समाप्त किया।

स्कूल, चिकित्सालय आदि प्रतिष्ठाके समय सर्वदेशमें स्थानीय प्रधान व्यक्तिको सभापति बनाया जाता है। भक्त-समाजमें तत्कालमें उपस्थित परम पूज्यपाद श्रीयुक्त जगन्नाथदास बाबाजी महाशयको प्रपन्नाश्रम-प्रतिष्ठाका सभापति-आसन प्रदान किया गया जो सब प्रकारसे प्रशस्त है। जिस-जिस गाँवमें प्रपन्नाश्रम स्थापित हो, उसकी प्रतिष्ठा इस प्रकार ही करना कर्त्तव्य है।"

—'आमलाजोड़ा प्रपन्नाश्रम-प्रतिष्ठा', स० तो० ४।२

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

परम प्रभुके चरणोंमें प्रार्थना

बहुविज्ञ तत्त्वज्ञानियोंने बात यह सुस्थिर कही,
माधव ! तुम्हें जो इष्ट होता सर्वदा होता वही।
अज्ञानतासे मूर्खजन मानव तुम्हें हैं मानते,
ज्ञानी, विवेकी, विज्ञवर विश्वेश तुम्हें जानते ॥१॥
जो कुछ किया तुमने स्वयं हे देवदेव ! हुआ वही,
जो कुछ करोगे तुम स्वयं आगे वही होगा सही।
जो कुछ स्वयं तुम कर रहे, हो रहा अब है तथा,
हैं हेतुमात्र सदैव तुम कर्त्ता तुम्हीं हो सर्वथा ॥२॥
हो निर्विकार तथापि तुम हो भक्तवत्सल सर्वदा,
हो तुम निरीह तथापि अद्भुत सृष्टि रचते हो सदा।
प्रकृतिसे परे सविशेष सच्चिदानन्द साकार हो,
सर्वेश होकर भी तथा तुम प्रेमवश्य प्रसिद्ध हो ॥३॥

करते तुम्हारा ही मनन मुनिजन तुम्हींमें रत सभी,
सन्तत तुम्हीं को देखते हैं ध्यान में योगेन्द्र भी।
विख्यात वेदोंमें विभो सबके तुम्हीं आराध्य हो,
कोई न तुमसे बड़ा, तुम एक सबके साध्य हो ॥४॥

पाकर तुम्हें फिर और कुछ पाना न रहता शेष है,
पाता न जबतक जीव तुमको भटकता सविशेष है।
जो जन तुम्हारे पदकमलके असल मधु को जानते,
वे मुक्ति की भी कर अनिच्छा तुच्छ उसको मानते ॥५॥

हे सच्चिदानन्द प्रभो! तुम नित्य सर्व सशक्त हो,
सौन्दर्य अनुपम, भक्तिप्राप्य शुद्धभक्त्यासक्त हो।
तुम ध्येय-गेय-अजेय हो निज भक्त पर अनुरक्त हो,
तुम भव-विमोचन पद्मलोचन पुण्यपद्मासक्त हो ॥६॥

भक्तजनके कार्यहेतु लेत विविध अवतार हो,
आद्यन्तहीन दयाब्धि अद्भुत भक्तिवश अखिलेश हो।
कर्त्ता तुम्हीं, भर्त्ता तुम्हीं हर्त्ता तुम्हीं हो सृष्टि के,
चर-अचर प्राणि लोक सब उपकरण हैं तव तुष्टि के ॥७॥

हे ईश! तुमने बिन हेतु मानव सुजन्म हमें दिया,
भवतरन हेतु कृपा किया, सत्सङ्ग औ सद्गुरु दिया।
विनती तुम्हारे चरणकमलोंमें प्रभो हम यह करें,
नित्य नव उत्साहसे हम शुद्ध-भक्ति ही करें ॥८॥

सत्सङ्ग में आनन्दसे हम नित्य गुरु-सेवन करें,
नामापराध कुसङ्गसे बचकर नामसंकीर्त्तन सदा करें।
गुरु-वचन पालन तथा वैष्णव-प्रीति हम आचरें,
सद्ग्रन्थानुशीलन संत-हरि-गुरु की सेवा हम करें ॥९॥

जय दीनबन्धो सौख्यसिन्धो देवदेव जय दयानिधे,
निखिल रसामृतसिन्धो शाश्वत विश्वन्द्य महाविधे।
जय पूर्ण पुरुषोत्तम जनार्दन जय जगन्नाथ जगत्पते,
जय-जय विभो अच्युते हरे जय मंगलमय मायापते ॥१०॥

- श्रीश्यामकिशोर ब्रह्मचारी

सन्दर्भ-सार

(भक्तिसन्दर्भ-१६)

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥
(भा० ११।२।४५)

जो व्यक्ति बहिर्दृष्टि परित्याग कर सभी आत्माओंमें भगवानका आविर्भाव एवं आत्मस्वरूप श्रीहरिमें चिद्विलासोपकरण सभी दर्शन करते हैं, वे भागवतोत्तम हैं। इस श्लोकानुसार परमसिद्ध पुरुषोंका भी सर्व-भूतादर सिद्ध और दृष्ट होता है। पेड़के मूल-सेचन द्वारा जिस प्रकार उसके शाखा-प्रशाखा-उपशाखादि तृप्ति प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार अच्युत-सेवाद्वारा ही सर्वभूत-पूजा होती है। इस उक्तिद्वारा साधकोंके सम्बन्ध में विष्णु व्यतीत अन्यान्य भूत-पूजादिकी जो पुनरुक्ति देखी जा रही है, वह केवल स्वतन्त्र भाव की दृष्टिसे (जड़ीय दर्शनमें) उस उस भूतपूजादिकी पुनरुक्ति है– ऐसा जानना होगा । इस स्थलमें उस उस प्राणीमें अन्तर्यामी ईश्वररूपसे अधिष्ठानयुक्त भगवान की उपासना ही विहित हो रही है एवं भगवत्-सम्बन्धसे ही (हरि-सम्बन्धी वस्तु भागवत ज्ञान से ही) उनके आदरकी आवश्यकता है। अपनेको छोड़कर अन्यान्य प्राणीमें जिससे राग-द्वेष निवृत्ति हो, इसके लिए ही तादृश भगवत् सम्बन्धी ज्ञानसे भूतादर-विधि समझना होगा । अतएव भक्तिको छोड़कर कर्मवासनामयी भूतानु-कम्पाके वशीभूत होकर भगवदर्चन त्याग करनेवाले जड़भरतके लिए भगवत्-प्राप्तिमें बाधा उपस्थित हुई थी। अतएव मुख्यतम भगवद्भजन परित्याग कर भूतदयारूप भगवद्भजन केवल कर्मकाण्डका आवाहन मात्र है—यही स्पष्ट रूपसे प्रमाणित हुआ। अन्यान्य भूतों का अनादर नहीं करना चाहिए, किन्तु स्वतन्त्ररूपसे अन्यान्य देवता या भूतों की उपासनाको धिक्कार दिया गया है । अतएव कहा गया है—

अविस्मितं तं परिपूर्णकामं
स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम ।
विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः
श्वलाङ्गूलेनातितितर्ति सिन्धुम् ॥
(भा० ६।९।२२)

निरहंकार, प्राकृतरागादिशून्य, अपने लाभसे परिपूर्णकाम, उपाधि-परिच्छेद रहित परमेश्वरका परित्याग कर जो व्यक्ति अपर देवताका शरण ग्रहण करते हैं, वे अज्ञ लोग कुक्कुरके पूँछ का आश्रय ग्रहण कर दुस्तर समुद्र उत्तीर्ण होनेकी इच्छा करते हैं।

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीया-
द्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ।
सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभि-
कामानात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥
(भा० १०।४८।२६)

श्रीभगवानके प्रति अक्रूरने कहा था— हे प्रभो ! आप भक्तप्रिय, सत्यवाक्, सुहृद् और कृतज्ञ हैं। इस प्रकार आपको छोड़कर कौन पण्डित व्यक्ति दूसरेका शरणापन्न होगा ? आप भजनकारीको उसके अभिलषित समस्त वस्तु प्रदान कर भी निश्चिन्त नहीं होते। जिनकी ह्रास-वृद्धि नहीं है अर्थात् जो नित्य हैं, ऐसे अपने आपको भी प्रदान करते हैं।

आप सुहृद् अर्थात् हितकारी स्वभावविशिष्ट हैं, उसमें भी कृतज्ञ अर्थात् भक्तकी सेवाके आभास मात्रसे ही बहुत आदर करते हैं । अतएव भक्तकी सभी अभीष्ट वस्तु ही प्रदान करते हैं । उससे भी निवृत्त या तृप्त न होकर अपने तक को प्रदान किया करते हैं । इस प्रकारकी सर्वतोभावेन दानक्रियाद्वारा अथवा बहुतसे लोगोंको अभीष्ट वस्तु प्रदान-कार्यसे उनकी संस्थितिमें कोई अभाव नहीं होता । इसलिए कहते हैं कि उनका अपचय—दाना-भाव फलसे वृद्धि या सञ्चय और उपचय—दानफल का क्षय नहीं है । अभक्तमात्रका अनादर करते हुए कह रहे हैं—

येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिं प्रपन्ना
ज्ञानञ्च तत्त्वविषयं सहधर्मं यत्र ।
नाराधनं भगवतो वितरन्त्यमुष्य
सम्मोहिता वितनया बत मायया ते ॥
(भा० ३।१५।२४)

देवताओं के प्रति ब्रह्मा कह रहे हैं—जिस मनुष्यजन्ममें भगवद्धर्मके साथ भगवत्तत्त्व-ज्ञान प्राप्त होता है एवं जो जन्म हमारे लिए भी प्रार्थनीय है, वह मनुष्य-जन्म प्राप्त कर भी जो व्यक्ति भगवान श्रीहरिकी आराधना नहीं करते हैं, वे लोग भगवान् की विशाल माया द्वारा मोहित हैं ।

अतएव निम्नलिखित श्लोक में कहा गया है—

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये
न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।
जिह्वा सती दार्दुरिकेव सूत
न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥
(भा० २।३।२०)

अर्थात् जो व्यक्ति कर्णपुटसे भूरिगुण-सम्पन्न भगवान् उरुक्रमके विक्रमपूर्ण लीलाका श्रवण नहीं करते, उनके दोनों कान वृथा छिद्र मात्र हैं । जो जिह्वा भगवान का विक्रम कीर्त्तन नहीं करती, वह जिह्वा मेंढक की जिह्वातुल्य और दुष्ट है ।

ब्रह्म-वैवर्त्त पुराणमें भी कहा गया है—

प्राप्यापि दुर्लभतरं मानुष्यं विबुधेप्सितम् ।
पैराश्रितो न गोविन्दस्तैरात्मा वञ्चितश्चिरम् ॥
अशीतिञ्चतुरश्चैव लक्षांस्तान् जीवजातिषु ।
भ्रमद्भिः पुरुषैः प्राप्य मानुष्यं जन्मपर्ययात् ॥
तदप्यफलतां जात तेषामात्माभिमानिनाम् ।
बराकाणामनाश्रित्य गोविन्दचरणद्वयम् ॥

देवताओं द्वारा वांछित दुर्लभतर मनुष्य-जन्म प्राप्त कर भी जो लोग गोविन्द भगवान् का आश्रय ग्रहण नहीं करते, वे लोग चिरकालके लिए आत्माको वंचित करते हैं । चौरासी लाख जीव-योनि भ्रमण करते करते अन्तमें मनुष्यजन्म प्राप्त होता है । जो सभी आत्माभिमानी नीच अशोच्य व्यक्ति गोविन्द-देवका आश्रय ग्रहण नहीं करते, उनका दुर्लभ मनुष्य जन्म वृथा ही है ।

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥
(भा० ५।१८।१२)

जिनकी भगवान् श्रीहरिके प्रति निष्काम सेवा-प्रवृत्ति या अहैतुकी भक्ति वर्त्तमान है, धर्मज्ञान-वैराग्यादि सभी गुणोंके साथ समस्त देवता उनमें सम्यग्रूपसे नित्यकाल अवस्थान करते हैं । श्रीहरिमें भक्तिहीन अन्याभिलाषी, कर्मी, ज्ञानी, योगी अथवा गृहादि

अनित्य विषयों में आसक्त) असत् अभक्त लोग अनित्य बाह्य-विषय-सुखके प्रति दौड़ते रहते हैं। अतएव महत् या सज्जनोंके गुण उनमें कहाँसे रहेंगे ?

शिव-ब्रह्मादि देवतालोग इन्द्रियाधिष्ठातृ-रूपसे जीवोंके शरीरमें विराज करते हैं। शुद्ध भक्तके शरीरमें रहकर उसके धर्मज्ञानादि गुण प्रकाश किया करते हैं। अतएव भक्ति-हीन मुनियोंकी निम्नलिखित श्लोकमें निन्दा देखी जाती है—

अह्नचापृतार्त्तकरणा निशि निःशयना
नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः ।
दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव
युष्मत्प्रसंगविमुखा इह संसरन्ति ॥
(भा० ३।६।१०)

भगवान् विष्णुसे ब्रह्माने कहा—हे देव ! आपके श्रवण-कीर्त्तन प्रसंगसे विमुख होने पर मुनि लोग भी इस संसारमें गमनागमन रूप क्लेश प्राप्त करते हैं। दिनके समय उनकी सभी इन्द्रियाँ भगवदितर विषयोंमें नियुक्त रहकर अत्यन्त क्लेश प्राप्त करती हैं। पुनः रात्रिमें बाह्य इन्द्रिय-कार्यसे निवृत्त होकर निद्रागत होनेपर नाना असद्वस्तुओंके प्रति धावमान और मनोधर्मवशसे दुःस्वप्नादि दर्शनयोगसे क्षण-क्षणमें निद्रा टूटती रहती है। अर्थके लिए उद्यम करने पर भी दैव-कर्त्तृक वह प्रतिहत होता रहता है।

स्वभावानुसार भगवद्भजन-विमुख सामान्य मनुष्य लोग तो संसारी होते ही हैं, भक्ति व्यतीत अन्य मार्गमें सिद्ध मुनिगण भी भगवत्प्रसंग विमुख होने पर उनको भी संसार प्राप्त होता है। मुक्ताभिमानी ज्ञानी लोग अत्यन्त कष्टसे जीवन्मुक्तदशामें आरोहण करके भी भक्तिहीन होनेके कारण अधःपतित होते हैं।

यदि कहा जाय कि क्या उन्होंने धर्माधर्म-बोध प्राप्त नहीं किया ? इसके उत्तरमें यमराज कहते हैं—

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं
न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः ।
न सिद्धमुख्याः असुरा मनुष्याः
कुतश्च विद्याधरचारणादयः ॥
स्वयंभूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥
द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ।
गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥
(भा० ६।३।१९-२१)

वैष्णवराज यम अपने दूतोंके प्रति कह रहे हैं—साक्षात् भगवान्ने शुद्ध भक्ति-धर्म प्रणयन किया है। भृगु आदि ऋषि लोग, देवता लोग, प्रधान प्रधान सिद्ध व्यक्ति भी धर्म नहीं जानते। असुर लोग, मनुष्य लोग या विद्याधर चारणादि निकृष्ट प्राणी उसे किस प्रकार जानेंगे ? ब्रह्मा, नारद, शिव, चतुःसन, कपिलदेव, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि, शुकदेव और मैं (यम)—हम लोग ये बारह व्यक्ति मात्र भागवत-धर्म अवगत हैं। यह अतीव गुह्य, विशुद्ध और दुर्बोध्य है। यह जानने पर अमृतत्व प्राप्त होता है।

उल्लिखित बारह व्यक्ति वैष्णवोंको छोड़कर दूसरोंकी बुद्धि विष्णु मायाद्वारा मुग्ध है। वे लोग तात्कालिक मधुर लगनेवाले अर्थवादरूप कर्मकाण्डमय वेदमें जड़ीभूत बुद्धि होने के कारण कर्मकाण्डमें महा आडम्बर होता है। किन्तु अनायास-साध्य परमार्थप्रद हरिनामकी महिमा वे नहीं जानते। इसलिए वे लोग महागुणी होकर भी संसार-दशा प्राप्त करते हैं।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीमद्भागवतके टीकाकार

(७) श्रीव्यासतत्वज्ञ या श्रीव्यासतीर्थ

परिचय—श्रीमद्भागवतकी 'मन्दनन्दिनी' टीकाके रचयिता व्यासतीर्थ या व्यासतत्वज्ञ का विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता। इन्होंने भुवनेन्द्रकी आज्ञासे भागवतके सप्तमस्कन्धकी टीका की थी—

सप्तमस्कन्धपद्यानां श्रीमद्भागवते शुभे।
भुवेनेन्द्राज्ञया कुर्वे योजनां मन्दनन्दिनीम्॥

व्यासतत्वज्ञ मध्व-सम्प्रदायके महान् स्तम्भ माने गये हैं। ये नृसिंहोपासक थे, ऐसा इनके मंगलाचरण-पद्यसे प्रतीत होता है—

चरणस्मरणात्सर्वं दुरितस्य विदारणम्।
शरणं नृहरिं वन्दे करुणावरुणालयम्॥

चरणस्मरण मात्रसे ही समस्त संकटोंके नाश करनेवाले, करुणाके समुद्र, परम रक्षक नृसिंह की वन्दना करता हूँ।

तत्वज्ञ मुनिका स्मरण परमावश्यक माना गया है—

आपततोऽन्यथा भातभागं भागवतं सताम्।
तात्पर्यतोऽजितः पद्यः तं तत्वज्ञमुनिं भजे॥

जयमुनिका समाश्रय बुद्धिके लिए परमावश्यक है--

वाणी-नर्तन रगाभवत् तान् जयमुनीन् गुरून्।
अस्मद्देशिकपर्यन्तान् बुद्धिशुद्धयै समाश्रये॥

बिना आचार्यकी कृपासे हृदयान्धकार नहीं मिटता—

यो ऽतनोत्प्रभया विष्णु तत्व-कर्म-निनिर्णयौ।
तमो निरास्यच्चतमाचार्य सूर्यमहं भजे॥

भुवनेन्द्रने इनका अत्यन्त उपकार किया था--

सृष्टिकूपे निपतितं द्विजमुद्धृत्यमापतेः।
पदाम्बुजे जिहसन्तं भुवनेन्द्रमहं भजे॥

इनका समय 'गौड़ीय दर्शनेर इतिहास' ग्रन्थके अनुसार १४६०-१५३८ ई० लिखा गया है।

श्रीव्यासतत्वज्ञ कृत टीकाका नाम मन्द-नन्दिनी है। मन्दबुद्धि व्यक्तियोंको आनन्द-दायिनी होनेके कारण इसका नाम मन्द-नन्दिनी रखा गया, ऐसा प्रतीत होता है। सप्तम स्कन्धमें रसमय भगवद्भक्त प्रह्लाद की कथाका वर्णन है। अतः केवल सप्तम स्कन्ध पर ही यह टीका रची गई है—

सप्तमस्कन्धगफले अतिस्वादयिष्टे रसं।
शुकानुकम्पया व्यासस्तत्वज्ञः कश्चनद्विज॥

टीका का उपसंहार इस प्रकारसे किया है—

नमः कृष्णभवाष्टम्यां दृष्ट्वेवा मन्दनन्दिनी।
स्मयन्नानन्द सान्द्रोऽयं नन्दयेन्नन्दनन्दनः॥

टीका-शैली—'द्विपदन्नं न भोक्तव्यम्'

टीका—अनुमान प्रकारश्च तट्टीकायां न्यायामृते च व्यक्तः। अर्थात् अनुमानप्रकार टीकामें एवं न्यायामृतमें स्पष्ट है।

श्रीविजयध्वजकृत पदरत्नावलीका प्रभाव

इनकी टीका पर स्पष्ट है। इनकी टीकामें श्रीविजयध्वजका उल्लेख भी है—

"विजयध्वजतीर्थानां कृतेरनुकृतिर्मम।
शिशोरिवकृतिः पित्रोर्हासहर्षावहासिताम्।"

श्रीव्यासदेवके भागवतका प्रकाशन श्रीमन्मध्वाचार्यने किया। मेरी टीका भी भगवान् पर दूर्वाकी भाँति शोभित होवे—

"व्यासप्रोक्तं भागवतं पूर्णप्रज्ञप्रकाशितम्।
अत्र टीका मदीयाऽपि तुष्टयै दूर्वेवमापतौ॥"

ग्रन्थमें अनेक प्रमाद हो जाते हैं। किन्तु गुणान्वेषण ही करना चाहिये। शतशः पाषाणोंसे व्याप्त पर्वतमें हीरक का अन्वेषक उसे ढूंढ ही लेता है। इसी प्रकार गुणग्राही व्यक्ति मेरी टीकामें गुण-ग्रहण कर ही लेते हैं—

प्रमादबहुले ग्रन्थे गुणानेवान्ववेषयेत्।
ग्रावग्रामयुतेह्यद्रावन्वेषयति हीरकः॥

[८] लिंघेरी श्रीनिवास

परिचय—लिंघेरी श्रीनिवासाचार्य व्यासतत्वज्ञके प्रधान शिष्य थे। श्रीनिवासाचार्य के पिताका नाम 'रुग्मिणीश' था, जैसा कि निम्न श्लोकसे स्पष्ट है—

'लिंघेरी श्रीनिवासेन रुग्मिणीशार्यसूनुना।'

रुग्मिणीशार्यका अन्य कोई वैशिष्ट्य प्रसिद्ध नहीं है। पुष्पिकामें उनके वैशिष्ट्यका थोड़ा-सा संकेत विशेषणों द्वारा ज्ञात होता है। लिंघेरी इनका उपनाम था। ये दक्षिण प्रदेशके निवासी थे। ये मध्व सम्प्रदायके अनुयायी थे, यह बात मंगलाचरणसे स्पष्ट है—

प्रणम्य मध्वहृत्कंजसंस्थव्यासं तथा गुरून्।
पूर्वटीका कृतांश्चाथ विजयध्वजपूर्वकान्॥

उक्त श्लोकमें श्रीमध्वाचार्य, श्रीव्यास तथा विजयध्वज का उल्लेख किया गया है।

इनके समयका निश्चित उल्लेख नहीं मिलता। यदि व्यासतत्वज्ञके शिष्य माने जाय, तो इनका समय १४८० ई० के लगभग माना जा सकता है।

इनकी भागवत पर अष्टम-स्कन्धकी टीका उपलब्ध है, जिसका नाम पद-मुक्तावली है। यह श्रीहरिकी प्रीतिके लिए है—

'पदमुक्तावली भूयात् प्रीत्यै हरेः।'

पुष्पिकामें भी इसका उल्लेख है—

'इति कवि मुक्तामालानायक रत्नायितैशभार ..... श्रीनिवासकृतायां पदमुक्तावल्याम्।'

इससे पदमुक्तावली नाम सुस्पष्ट है।

आचार्य विजयध्वज इसके पूर्व अपनी 'पदरत्नावली' टीकाका प्रणयन कर चुके थे। हो सकता है कि इसी आधार पर इन्होंने अपनी टीकाका नाम 'पदमुक्तावली' रखा हो।

यह टीका भागवतके अष्टम स्कन्धपर ही उपलब्ध है। भगवान्की सन्तुष्टि ही एकमात्र प्रयोजन है, यह 'हरितुष्टये' द्वारा स्पष्ट है। इस टीकासे मन्दबुद्धियोंको अधिक लाभ होगा, यह उन्हें विश्वास है—

लिंघेरी श्रीनिवासेन कृता मन्दोपकारिणी।'

उक्त पद्यके मन्दोपकारिणी पदसे स्पष्ट है कि इस स्कन्धके मर्मका अवगाहन सहज नहीं था। अतः इन्होंने टीकारूपी सोपानसे उसे सहजगम्य बनानेका प्रयत्न किया है। हो सकता है कि अन्य स्कन्धोंपर भी इन्होंने टीका की होगी।

इन्होंने कन्नड़के अनेक शब्दोंको पर्याय-वाची शब्दोंके स्थान पर सन्निविष्ट किया है।

[९] श्रीनिवास-तीर्थ

परिचय—'भागवत-मूल-तात्पर्य-विवरण' के रचयिता श्रीनिवासतीर्थ मध्व-सम्प्रदायके महादेशिक श्री 'यदुपति' आचार्यके पुत्र थे। यदुपतिसे ही समग्र शास्त्रोंका स्वाध्याय करनेके कारण यदुपति श्रीनिवासतीर्थके गुरु भी थे।

इनके मध्व-सम्प्रदायका आनुगत्य मंगलाचरण द्वारा जाना जा सकता है—

श्रीरामं हनुमत्सेव्यं मध्वेष्टं बादरायणम्।
श्रीकृष्णं भीमसेनेष्टं भजेऽहं बुद्धिशुद्धये॥
प्रणम्य यादवाचार्यं गुरूणां पादपंकजे।
एकादश-स्कन्ध मूलतात्पर्यं विवृणोऽम्यहम्॥

मंगलाचरणमें श्रीराम, हनुमान, बादरायण, श्रीकृष्ण आदिकी वन्दना की गई है।

श्रीनिवासको तीर्थकी उपाधि श्रीराघवेन्द्र ने इनकी विद्वत्तापर मुग्ध होकर ही दी थी। इन्होंने भागवतके एकादश स्कन्धकी टीका की है।

'गौड़ीय दर्शनेर इतिहास' के अनुसार इनका आचार्यत्व १५९०-१६४० माना है। अतः १५७० ई० के आस-पास इनका जन्म माना जा सकता है। इनकी कृतियाँ निम्न-लिखित हैं—

(१) तात्पर्य-विवरण (भागवत-टीका) (२) न्यायामृत (३) न्यायामृत-प्रकाश (४) तत्त्वोद्योत-टीकाकी वृत्ति, (५) कृष्णामृत-महार्णवकी टीका (६) तैत्तरीय, माण्डूक्योपनिषद् की वृत्ति।

टीका-वैशिष्ट्य—तात्पर्य-विवरणके रचयिता श्रीनिवासतीर्थकी टीका का उल्लेख एकादश स्कन्धके प्रारम्भमें मिलता है—

'एकादश स्कन्ध मूलतात्पर्यं विवृणोम्यहम्।'

यह टीका केवल एकादश स्कन्धपर ही उपलब्ध है। इसका उद्देश्य भागवतकी व्याख्या मध्व-सम्प्रदायके अनुसार करना है। एकादश स्कन्ध भागवतका गूढ़तम स्कन्ध है। इसका विवेचन विद्वता की कसौटी मानी जाती है। इसी कारण इस स्कन्धपर टीका की गई। अपनी टीकामें विशेषतः तात्पर्य-निर्णयका ही उल्लेख किया है, भूमिका नाम मात्र है। भाषा सरल है तथा विशिष्ट स्थलों पर स्व-सम्प्रदायके अनुसार विवरण प्रस्तुत किया है।

—डा० श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी,
एम ए., पी. एच डी

=(+)=

'महाजनो येन गतः स पन्थाः'

श्रीमन्महाभारतके वन-पर्वमें यक्ष-युधिष्ठिर संवादमें युधिष्ठिर महाराजने यक्षको यह उत्तर दिया था—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः
नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

इस श्लोकका तात्पर्य यह है कि तर्ककी कोई प्रतिष्ठा नहीं है, क्योंकि आज एक तार्किकद्वारा स्थापित मतको कल उससे भी अधिक तार्किक व्यक्ति खण्डन कर सकता है; श्रुतियाँ विभिन्न हैं एवं उनकी संख्या असंख्य है. अतएव उनसे धर्मके सार तत्त्वको ग्रहण करना अत्यन्त कठिन है; प्रत्येक मुनि-ऋषिने पृथक्-पृथक् मत अपनाया है, अतएव उन मतोंमेंसे कौन-सा मत शास्त्र या धर्मके यथार्थ तत्त्वको बतलाता है, यह जानना संभवपर नहीं है; अतएव धर्म तत्त्वका ज्ञान बहुत ही गोपनीय है। महाजनोंने जिस पथपर चलकर भगवत्प्राप्ति की है, उसी पथ पर चलनेसे धर्म-तत्त्वका यथार्थ ज्ञान होता है । यहाँ महाजनका तात्पर्य लेन-देन करनेवाले अर्थ-व्यवसायी, समाजके ऊँचे व्यक्ति या जागतिक दृष्टिसे श्रेष्ठ व्यक्तिको नहीं जानना चाहिए। यहाँ महाजन कहनेसे उन व्यक्तियोंसे तात्पर्य है जो यथार्थतः महान बन चुके हैं। महान् व्यक्ति वही है जिसने अपने चित्स्वरूप एवं अपने सेव्य पूर्ण-वस्तु भगवत्स्वरूपकी अनुभूति पूर्णतः प्राप्त कर ली है। हमारे सनातन धर्म-शास्त्रमें प्रधानतः निम्नलिखित १२ तत्त्व-वेत्ताओंको महाजनकी संज्ञा दी गई है—

स्वयम्भुर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥
(भा० ६।३।२०)

अर्थात् स्वयम्भु (ब्रह्माजी), नारदजी, शिवजी, कुमार (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार आदि चारोंको लेकर) देवहूति-पुत्र कपिल, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लादजी, जनक महाराज (जो विदेह नामसे प्रसिद्ध थे), भीष्म पितामह, बलि महाराज, शुकदेवजी एवं यमराज—ये बारह महाजन हैं । यह धर्म अत्यन्त निर्मल, अतीव गोपनीय एवं भक्तिरहित व्यक्तियोंके लिए दुर्बोध है। इस धर्मको जाननेसे जीव भगवानकी परम प्रीतिरूप प्रयोजन प्राप्त करता है। इन भागवत-धर्म-तत्त्ववेत्ता १२ व्यक्तियोंको छोड़कर अष्टावक्र, वशिष्ठ, दत्तात्रेय, याज्ञवल्क्य, जैमिनी आदि अन्यान्य धर्म-शास्त्र-प्रणेताओंकी मति भगवान् की दैवी माया द्वारा अत्यन्त मोहित होनेके कारण वे लोग भागवत-धर्मके बारेमें यथार्थतः जाननेमें असमर्थ रहे। उन लोगोंने ऋक्, यजुः और साम—इन वेदत्रयीकी मनोहारिणी, आपातरमणीय फलश्रुतिरूप वाक्योंमें ही अपने चित्तको आबद्ध रखा है। अतएव वे लोग सहज एवं सर्वसुलभ

भक्तिमार्गको छोड़कर द्रव्य-अनुष्ठान-मंत्र-दीर्घकाल आदिकी अपेक्षा रखनेवाले दर्श-पौर्णमासी, सकाम्य-यज्ञ, अग्निष्ठोम आदि अनित्य एवं तुच्छ कर्मोंमें ही प्रवृत्त हुए हैं।

मायाबद्ध जीव कृष्णसे अनादिकालसे बहिर्मुख होनेके कारण संसाररूपी भयंकर रोगसे ग्रस्त हैं। वे इतने घोर अज्ञान तिमिरसे घिरे हुए हैं कि उन्हें अपने स्वस्वरूप या भगवत् स्वरूपका ज्ञान बिलकुल ही नहीं है। वे अपने चर्म-मांस-रक्त-मज्जा-मेधयुक्त शरीर को ही अपना यथार्थ स्वरूप एवं तत्सम्बन्धी वस्तुओंको ही अपना सर्वस्व मान बैठे हैं। वे दिवारात्र शरीरके सुख, सुविधाओं आदिको जुटानेमें ही व्यस्त हैं। वे समझते हैं कि अपनी अभाव-पूर्त्ति एवं दुःख-निवृत्ति ही सुखका यथार्थ परिचय है। वे क्षणिक सुख, जो यथार्थमें दुःखका ही विकार है, वास्तविक सुख मानकर उसके लिए चेष्टा करते हैं। अनेक दुःख प्राप्त होने पर भी एवं बारम्बार असफल होनेपर भी उसी सुखाभासकी ही कामना करते रहते हैं। वे नानाप्रकारके संकल्प-विकल्पके अधीन होकर भले-बुरे कर्मोंका आवाहन करते हैं। भगवान नामकी कोई वस्तु हैं या नहीं, यदि हैं तो उनकी आराधना करनी चाहिए, इस बातका माया-मुग्ध जीवोंको कोई पता है ही नहीं। यदि अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए या किसी स्वार्थ-कार्यमें बाधा उपस्थित होने की आशंका या भयसे ईश्वर नामक कोई वस्तु स्वीकार कर भी लें, तब वह भी केवल थोड़े समयके लिए ही मान लेते हैं, सब समयके लिए नहीं। इनसे भी थोड़े उन्नत, एवं नीति-विज्ञान सम्पन्न व्यक्तियोंके अनुसार ईश्वर कुछ भी नहीं है, केवल नीतिका पालन करनेमात्रसे ही ईश्वर मानना हो जाता है। इसलिए ईश्वरकी पृथक् आराधना करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। और कुछ लोगोंका मत है कि ईश्वर हमें सुख-सुविधा तथा हमारी अभीप्सित वस्तुएँ देने के लिए ही अवस्थित हैं अन्यथा उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। कुछ लोगोंका मत यह है कि जगतमें जो कुछ होता है, वह प्रकृतिद्वारा होता है, इसमें ईश्वरका कोई कर्त्तृत्व नहीं है। ईश्वरकी कल्पना हमारे शासन और भय दिखलानेके लिए की गई है। और कुछ लोगों का कहना है कि आत्मा, परलोक, ईश्वर आदि कुछ भी नहीं है। ऐसी बातें जो हमारे शास्त्रोंमें लिखी गई हैं, वे सभी मनगढ़न्त हैं और सुविधावादियोंने ऐसा लिख डाला है। जो कुछ इन आँखों द्वारा दिखलाई देता है, वही सत्य है और सब कुछ ही मिथ्या है। अतएव स्वेच्छापूर्वक आहार-विहार, भोग-विलास, सुख-सुविधाकी चेष्टा ही सब कुछ है। और मनुष्य ही अपने वैज्ञानिक साधनोंसे ईश्वर भी बन सकता है और अमरत्वको प्राप्त कर सकता है, इत्यादि।

इस तरह मायामोहित, भोगासक्त जीव कल्पना-जल्पना करते रहते हैं और अपना वास्तविक मंगल जाननेमें पूर्णतः असमर्थ होकर यहाँ वहाँ भटकते रहते हैं। वे माया-मरीचिकाकी मृग-तृष्णामें चक्कर काटते-काटते हैरान हो जाते हैं किन्तु उन्हें कहीं भी यथार्थ शान्ति या सुखकी प्राप्ति नहीं होती। इसका अनुसन्धान कहाँ प्राप्त होगा, इसका भी उन्हें पता नहीं है।

इन सब मायामुग्ध जीवोंकी दुर्दशा देखकर अपार करुणामय हृदयवाले परम प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण दयासे द्रवित हो पड़े। अतः इन पर कृपा करनेके लिए और अपने अस्तित्वका जीवोंको ज्ञान देनेके लिए उन्होंने वेद-पुराण-इतिहासरूपी शास्त्रोंको प्रकट किया। किन्तु उन्होंने यह भी देखा कि शास्त्र अनन्त हैं एवं उनका तात्पर्य भी बड़ा ही गूढ़ है। शास्त्रोंमें विभिन्न अधिकारियोंके लिए विभिन्न बातें कही गई हैं। अतः इन सब परस्पर विरोधी बातोंका सामञ्जस्य कर शास्त्रोंके यथार्थ अर्थको ग्रहण करना साधारण बद्धजीवोंके लिए संभवपर नहीं है। इसलिए वे स्वेच्छासे इस भूतलपर अवतीर्ण होकर जीवोंको अपनी ओर आकर्षण करनेका प्रयास करते हैं। किन्तु जब भगवान्ने यह देखा कि मायामोहित जीव अपने परम प्रभु उन्हें समझ नहीं पा रहे हैं, बल्कि उन्हें अपने ही समान मान बैठे हैं, तब उन्होंने अपने प्रतिनिधि स्वरूप भागवतोंको भेजना ही उपयुक्त समझा। अतः वे परम करुणामय प्रभु महान्त या परम भक्त रूपसे सर्वदा हमारे कल्याणके लिए चेष्टान्वित हैं। वे प्रत्येक जीव-हृदयमें चैत्य-गुरु या अन्तर्यामी परमात्मा रूपसे रहकर उन्हें उपदेश देते रहते हैं। अतः जो व्यक्ति अपना कल्याण चाहते हैं, उन्हें महाजन या महान्त भक्तोंका चरणाश्रम अवश्य ही ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि भागवतोंने अपनी प्रेमा-भक्तिसे भगवान्को वशीभूत कर रखा है और शास्त्रोंका जो सार तात्पर्य है, उसे यथार्थतः जानते हैं। शास्त्र अगाध-समुद्र तुल्य हैं। इन पर अवगाहन करना बिना भगवत्-कृपासे संभवपर नहीं है। हमारा समय भी अत्यन्त अल्प है एवं सत्मार्गपर बहुत विघ्न हैं। अतः हमें सारभूत महाजन वाक्योंको ही ग्रहण करना चाहिए एवं उन्हींके दिए हुए आलोकद्वारा शास्त्रोंको समझना चाहिए। महाजनोंके आनुगत्यके बिना भगवद्भक्ति प्राप्त करना असम्भव है। भगवान्के प्रियतम सेवकके सूत्रसे महाजन लोग भगवान्का मनोभीष्ट पूर्णतः जानते हैं एवं वे लोग अनायास ही सेवोन्मुख जीवोंपर कृपा कर उन्हें परम गतिरूप कृष्ण-प्रेम दे सकते हैं। भगवान् परिपूर्ण आनन्द महोदधि हैं एवं अखण्ड, असीम सुखके आधारस्वरूप हैं। उन्हें प्राप्तकर ही अणु चेतन जीव पूर्ण आनन्द प्राप्त कर सकते हैं एवं यथार्थ शान्ति एवं कल्याण लाभ कर सकते हैं। महाजनोंद्वारा आचरित-प्रचारित पथ ही सब प्रकारके श्रेयः का कारण है। अन्य पथमें चलनेसे विपथगामी होना अवश्यंभावी है। महाजनोंद्वारा प्रदर्शित पथ सब प्रकारके सन्तापोंसे रहित, सहज, सरल एवं अनायाससाध्य है। इसमें अधिक परिश्रम नहीं है। योगी, कर्मी, ज्ञानी, तपस्वी, तान्त्रिक आदि व्यक्ति महाजन नहीं हैं। जो व्यक्ति चारों वैष्णव सम्प्रदायोंके अन्तर्भुक्त हैं एवं भगवान् नारायणसे गुरु-परम्पराद्वारा श्रौत-वाणी प्राप्त किये हैं तथा परब्रह्मरूपी भगवान्को तत्त्वतः प्राप्त किये हैं, वे ही महाजन हैं। श्रुति-स्मृति-पुराण-इतिहास आदि सात्वत शास्त्रके विरुद्ध मत प्रचारकारी एवं आचरण करनेवाले व्यक्ति कदापि महाजन नहीं हो सकते। शास्त्रोंमें सर्वत्र ही भगवान्की भक्तिकी ही वर्णना है। इसलिए भक्ति ही शास्त्रोंका अभिधेय है। भक्ति-प्राप्त कर लेनेपर सब कुछ जानना हो जाता है।

धर्मका तत्त्व बड़ा ही गूढ़ है। बिना सद्गुरु की कृपा एवं भगवत्कृपासे यह तत्त्व बोधगम्य नहीं होता। भगवत्-पादपद्मोंमें सम्पूर्ण आत्म-समर्पण व्यतीत धर्म-पथमें प्रवेश करनेका और कोई मार्ग नहीं है। अपनी विद्वत्ता, कौशल, जागतिक योग्यता आदिके द्वारा धर्म-तत्त्व गोचरीभूत नहीं होता। क्योंकि यह स्वतःसिद्ध एवं स्वप्रकाश तत्त्व है। इसे और कोई वस्तु प्रकाशित नहीं कर सकते। यह तत्त्व कृपाकर जिनके हृदयमें आविर्भूत होता है, वे ही इसे जाननेमें समर्थ होते हैं।

आधुनिक तथाकथित मनीषियोंने जिन विचारोंका प्रचलन किया है, वे विचार सर्वथा अनुपयुक्त एवं कल्पित हैं। सात्वत शास्त्रोंके विचार सम्पूर्णतः यथार्थ अनुभूति पर आधारित हैं, अतः इनमें किसी प्रकारके दोष (भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव) आदि या अन्य प्रकारके सिद्धान्त होना असम्भव है। हम अपने स्थूल या सूक्ष्म ज्ञानके बलपर शास्त्रके यथार्थ तात्पर्यका अनुधावन नहीं कर सकते। शब्द ब्रह्म-स्वरूप शास्त्र-ज्ञान सद्गुरु या सद्वैष्णवोंकी निष्कपट सेवा एवं अहैतुकी कृपा द्वारा ही लब्ध है।

महाजन प्रदर्शित पथमें किसी प्रकारका भय या क्लेश नहीं है। इस पथ पर चलनेसे मंगलकी ही संभावना है, अमंगल नहीं; यदि भजन करते-करते अपरिपक्व अवस्थामें पतन भी हो जाय, तब भी कोई आशंका नहीं है। अतः गीतामें यह आश्वास-वाणी है—

नेहाऽभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतोभयात्॥

जो पथ हमारे महाजन निर्देश कर गये हैं, वह पथ सभी निर्विचार होकर ग्रहण कर सकते हैं। इसमें देह, काल, पात्र आदि विचार नहीं है। इसमें केवल श्रद्धा एवं विश्वासकी आवश्यकता है। सरल बुद्धि होनेपर भगवान्-की कृपा प्राप्त करना कठिन नहीं है। तर्कद्वारा इसे समझा नहीं जा सकता, बल्कि असल तत्त्वसे वंचित एवं दूर हट जायेंगे। इसलिए तर्कको सदैव पारमार्थिक पथसे दूर रखना होगा।

अतः सत्यानुसन्धित्सु परम कल्याण चाहनेवाले व्यक्तियोंको सब प्रकारके तर्क, आशंका, भय, कल्पना, भ्रम-प्रमाद आदिका परित्याग कर महाजनोंका आनुगत्य ग्रहण कर भागवत-धर्मका आचरण करना चाहिए जिसे अज्ञ व्यक्ति भी पालन कर सकते हैं। क्योंकि इस धर्मका अवलम्बन करनेपर हम किसी प्रकारकी बाधाद्वारा बाधित नहीं होंगे। आँख मींचकर दौड़ने पर या अज्ञात सारमें कोई कर्म करने पर स्खलित या पतित नहीं होंगे—

यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित्।
धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह॥
(भा० ११।२।३५)

—श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी

प्रचार-प्रसंग

दूमका एवं बरहमपुरमें श्रीश्रील आचार्यदेव—समितिके आचार्य एवं सभापति परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराज मथुरासे श्रीदामोदर-व्रत समापन कर श्रीमुरलीमोहन ब्रह्मचारी, श्रीकानाइलाल ब्रह्मचारी आदि ७-८ ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर बिहार प्रदेशके अन्तर्गत दूमका, देदाँड, रणबहाल, पाकुड़ एवं पश्चिम बंगालके बरहमपुरमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रदर्शित शुद्धा भक्तिका प्रबल रूपसे प्रचारित कर आजकल २४ परगनेके अन्तर्गत डायमण्ड हारबर, चाँदपुर एवं अन्यान्य विभिन्न नगरों एवं ग्रामोंमें जोरोंसे प्रचार कर रहे हैं।

कलकत्ता, चाँदनगर एवं खयखालीमें—समितिके विशिष्ट प्रचारक त्रिदण्डि-स्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त उद्धवमन्थी महाराज एवं त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज कुछ ब्रह्मचारियों के साथ चाँदनगर (प०बंग)के श्रीशैलेन्द्रनाथ दासाधिकारी के विशेष निमन्त्रणपर उक्त गाँवमें पधार कर तीन दिनों तक प्रबल रूपसे शुद्धा भक्ति का प्रचार कर खयखाली पहुँचे। यहाँ भी तीन दिनोंतक भक्ति-धर्मका प्रचार कर कलकत्तामें श्रीयुत सुधीरचन्द्र साहके भवनमें २ दिन भागवत-पाठ एवं कीर्त्तन किया। आजकल बर्द्धमान जिलेके विभिन्न ग्रामोंमें प्रचार कर रहे हैं।

जगद्गुरु श्रीश्रील प्रभुपादजी का तिरोभाव-महोत्सव

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति भी इस वर्ष भी गत १९ अग्रहायण, ६ दिसम्बर, सोमवारको विश्वव्यापी गौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता एवं श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके आचार्य-भास्कर नित्यलीला-प्रविष्ट जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरका तिरोभाव महोत्सव श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल-मठ एवं सभी शाखा-मठोंमें पाठ-कीर्त्तनादि के माध्यमसे बड़े ही समारोहपूर्वक मनाया गया है।

उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें सबेरे मंगलारतिके पश्चात् श्रीगुरु-वन्दना, श्रीगुर्वष्टक, श्रीप्रभुपादपद्म-स्तवक, श्रीगुरुपरम्परा, पंचतत्त्व, महाजन पदावली एवं महामंत्र-कीर्त्तनके पश्चात् पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने संक्षेपमें परमाराध्य श्रीश्रील प्रभुपादजीके अतिमर्त्य-चरित्र एवं शिक्षाओंपर प्रकाश डाला। शामको सन्ध्यारति के पश्चात् आयोजित विशेष धर्म सभामें श्रीकालाचाँद ब्रह्मचारी, श्रीमहामहेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने परमाराध्य श्रीश्रील प्रभुपादजीके चरित्र एवं शिक्षाकी विभिन्न पहलुओंपर भाषण दिया। अन्तमें पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने बड़े ही ओजस्वी एवं मार्मिक शब्दोंद्वारा उक्त अतिमर्त्य महापुरुषके लोकातीत जीवन-चरित्र, अप्राकृत गुणावली, अमूल्य उपदेशावली, वर्त्तमान वैष्णव जगत्को उनका अपूर्व दान, उनका अद्भुत एवं अद्वितीय प्रचार-कार्य-वैशिष्ट्य आदि विषयों पर भावपूर्ण भाषण देकर श्रोतृमण्डलीको भाव-विभोर एवं तन्मय कर दिया। भाषणके अन्तमें महामंत्रका कीर्त्तन हुआ एवं सभा-कार्य की इतिश्री की गई।

—निजस्व संवाददाता

सम्पादकीय—

पापका अवश्यम्भावी कुफल

प्राचीन इतिहास साक्षी है कि दम्भी, पाखण्डी, अत्याचारी, एवं आततायी असुर-समूह अन्तमें पराजित एवं ध्वस्त हुए हैं। प्राचीन कालके हिरण्यकशिपु, रावण, वेण, शिशुपाल और कंसकी बात तो छोड़िए, आधुनिक युगमें हिटलर, मुसोलिनी आदि क्रूर अत्याचारियोंका पतन एवं उनकी दुर्दशा प्रसिद्ध है। बंगला देशमें पाषण्ड पाकिस्तानने जो पाशविक अत्याचार, घोर दमन, व्यापक नरसंहार, घृणित स्त्री-बलात्कार, भीषण अग्निदाह एवं लूटपाटके द्वारा प्रभुत्व-स्थापनकी जो कुचेष्टा की थी, उससे उसके पापका घड़ा भर जानेपर उसके ही सिरपर धड़ाके के साथ फूटकर उसे रसातलमें पहुँचा दिया। पापका कुफल अवश्य-अवश्य भोग करना पड़ता है, भले ही किसी कारणवश विलम्ब हो जाय।

पूर्व बंगालसे आनेवाले घोर अत्याचारके शिकार होनेवाले शरणार्थियोंमें अधिकांश लोग धार्मिक एवं ईश्वर-विश्वासी हैं। यदि पश्चिम पाकिस्तानके जघन्य अत्याचारियोंको उनके अत्याचारका फल नहीं मिला होता, तो भगवद्विश्वासकी आधार-शिला नष्ट हो जाती। वे सभी लोग एवं उन दुर्दशाओंको प्रत्यक्ष देखनेवाले या श्रवण करनेवाले सभी नास्तिक हो जाते। आज पाकिस्तान अपने कुकर्मोंके फलस्वरूप दो भागोंमें खण्डित हो गया, उसके हजारों सैनिक मारे गये, एक लाख सशस्त्र सैनिक बन्दी बनाये गये, उसके शासक एवं अधिकांश जनरल हटाये गये। केवल इतना ही नहीं, शीघ्र ही वह अपना अस्तित्व भी लोप करनेके आत्मघाती प्रयासमें संलग्न हो गया है क्योंकि अभी उसे अपने कुकर्मोंका पूरा फल नहीं मिल पाया है, कुछ अवशेष है। इधर बंगला देश पूर्ण स्वाधीन हो गया है। उसके घाव अब भरने जा रहे हैं। परन्तु बंगला देशमें जो कुछ विनाश एवं नरसंहार हुआ है, उसके पूर्वकृत नोआखाली आदिके धार्मिक मदान्धताके ही कुफलस्वरूप हैं। हम आशा करते हैं कि नव-स्वतन्त्र बंगला देश इससे शिक्षा ग्रहण कर धार्मिक मदान्धतासे दूर रहेगी तथा सभी धर्मोंके अनुयायियोंके प्रति समानता एवं उदारताका व्यवहार करनेका प्रमाण देगी। क्योंकि बार-बार धर्मान्धताके शिकार होनेवाले शरणार्थियोंके अन्तःकरणमें भविष्यके लिए सन्देह है। आग का जला हुआ बैल सिन्दूरी रंगके मेघसे भी डरता है।

नवीन-ग्रन्थ—

श्रीचैतन्य महाप्रभु

के

स्वयंभगवत्ता-प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय-प्रमाण

संग्रहकर्त्ता— त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज।

संपादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज।

श्री चैतन्य महाप्रभुकी स्वयं-भगवत्ता सम्बन्धी वेद, उपनिषद्, पुराण, महाभारत और पांचरात्र आदि विभिन्न शास्त्रोंके प्रमाणोंका अभूतपूर्व संग्रह। इसमें संस्कृतके पद्यों एवं गद्योंका सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी साथ-साथ दिया गया है।

सोलह पेजी २०×३० आकारके ७६ पृष्ठोंकी पुस्तक। उत्तम कागजपर सुन्दर छपाई। मूल्य केवल १) रुपया। श्रद्धालु पाठक इस ग्रन्थरत्नका अवश्य ही संग्रह करें।

मँगाने का पता—**श्रीभागवत पत्रिका कार्यालय, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।**